“पञ्च संस्कार”

हमारे पूर्वाचार्यो के अनुसार, एक क्रिया-विधि है, जिसके द्वारा श्रीवैष्णव बना जाता है। इस विधि को “संप्रदाय में दीक्षा” कहा जाता है। इसे ‘गुर्मुक’ होना भी कहते हैं। इसका अर्थ है गुरु, अग्नि एवं भगवान के समक्ष भगवान की शरणागति करना। पद्म पुराण में वैष्णव कि पहचान निम्न रूप में दी गयी है:

ये कण्ठ लग्न तुलसी नलिनाक्ष माला ये बाहुमूल परिचिन्हत शंख चक्रा।
ये वा ललाट पटले लसदुर्ध्वपुण्ड्रा ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्र यन्ति ॥

कंठ में तुलसी या कमलाक्ष कि माला, बाहू पे शंख और चक्र एवं ललाट पे उर्ध्व- पुण्ड्र।

“तापः पुण्ड्रः तथा नामः मंत्रो यागश्च पंचमः”। (पद्म पुराण)

पञ्च संस्कार विधि को जीवात्मा के लिए सच्चा जन्म भी कहा जाता है, क्यूंकि इसी समय, जीवात्मा अपने सच्चे स्वरुप के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है और भगवान के प्रति संपूर्ण समर्पण करता है। *‘सम्यक करोति इति संस्कारः’*। संस्कार एक शुद्ध या निर्मल करने की विधी है। यह एक विधी है जहाँ किसी का रुप परिवर्तन एक अशिक्षित दशा/अवस्था से शिक्षित दशा में होता है। इसमें जाति, समाज, देश, लिंग, आर्थिक स्थिति, कुटुम्ब आदि पर आधारित कोई भेद नहीं है जो भी इस मोक्ष के मार्ग पर आने की इच्छा करता है, वह पञ्च-संस्कार के योग्य है| हर जीवात्मा का अंतिम लक्ष्य लीला-बिभूति (संसार मंडल) को छोड़कर नित्य-बिभूति (वैकुण्ठ) जाना और श्रीमन नारायण की नित्य सेवा में संलग्न होना है। पञ्च-संस्कार इस यात्रा का शुरुआत मात्र है।

‘आहार, निद्रा, भय, मैथुन’ के लिए हमें शिक्षा लेने की जरुरत नहीं पड़ती लेकिन आध्यात्मिक जीवन के लिए हमें आचार्य की जरुरत है।

शास्त्रज्ञानं बहुक्लेशं बुद्धेश्चलनकारणम्।
उपदेशाद्धरिं बुद्धवा विरमेत् सर्वकर्मसु ॥

सीमित बुद्धि एवं मन कि चंचलता के कारण शास्त्रों का अध्ययन, उसका अभिप्राय समझाना एवं अनुसरण दुष्कर है। इसलिए हमें शास्त्रों के गूढ़ अर्थ को समझने के लिये सदाचार्य के पास जाने की जरुरत है।

तद विज्ञानर्थं स: गुरुमेवाभिगच्छेत (मु. उप. 1.2.12)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया |

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः || (भ. गीता ४.३४)

"ताप: पुण्ड्र: तथा नाम: मंत्रो यागश्च पंचम:"। (पद्म पुराण)

१) ताप: (*तप्त-शंखचक्रम्*) - आचार्य होम-अग्नि (वैष्णवाग्नि) प्रज्वलित कर भगवान् का आवाहनं करते हैं। पहले दाएँ बाहु पर चक्र फिर बाएँ बहु पर शंख का लांचन होता है। यह हमारे शरीर को शुद्ध करके भगवान् के आगवन के लायक बनाता है। यह पूर्णत: शास्त्र-सम्मत है। वेदों में और महाभारत के विष्णु पर्व में इसका वर्णन मिलता है। पद्म, वराह, गरूड़ आदि पुराणों में भी इसका वर्णन मिलता है। श्री वेदांत देशिका अपने सच्चरित्र-रक्षा एवं पंचरात्र-रक्षा ग्रन्थ में इसका शास्त्रीय प्रमाण देते हैं। इसका निम्नलिखित श्लोकों का हमें स्मरण करना चाहिए एवं चक्र और शंख से यह प्रार्थना करना चाहिए की वो हमारे रास्ते के सारे रुकावटों को ध्वस्त कर दें।

१) सुदर्शन महाज्वाला कोटि सूर्य समप्रभः |

अज्ञान अन्धस्य में देवा विष्णोरमार्गम प्रदर्शय ||

२) पाँच्जन्यम निजध्वान: ध्वस्त पदागसंजय: |

पाहिमाम पाहिमाम घोर संसार्ण पादिनम ||

२) पुण्ड्र: - ताप से शुद्ध शरीर पर हम भगवान् के चरणों को धारण करते हैं। श्री वैष्णव हमेशा उर्ध्व पुण्ड्र ही धारण करते हैं, त्रिपुण्ड्र नहीं। उर्ध्व पुण्ड्र की सफेद रेखाएँ भगवान् के चरण चिह्न एवं लाल रेखा माता श्री देवी के चरण चिह्न का प्रतिनिधित्व करते हैं। थेन्कली वैष्णव उर्ध्व पुण्ड्र के नीचे आसन भी देते हैं हालाँकि वडकल वैष्णव ऐसा नहीं करते। दूसरी व्याख्या यह भी है कि दो उजली रेखायें क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा को दर्शाती हैं और मध्यम लाल रेखा

जीवात्मा एवं ब्रह्म के बीच स्थित माया (प्रकृति) को। उर्ध्व पुण्ड्र हमें यह भी सन्देश देता है की जीवात्मा को परमात्मा की शरणागति से पहले महालक्ष्मी माता की शरणागति करनी चाहिए।

उभय बीच शोभति कैसे, जीव ब्रह्म बीच माया जैसे। (मानस)

श्री वैष्णव शरीर के बारह स्थानों पर उर्ध्व पुण्ड्र धारण करते हैं। १२ उर्ध्व पुण्ड्र भगवान् के १२ व्यूह विस्तार का प्रतिनिधित्व करते हैं|

१) मस्तक - ॐ केशवाय नमः २) पेट के मध्य में - ॐ नारायणाय नमः ३) छाती में - ॐ माधवाय नमः ४) गले में - ॐ गोविन्दाय नमः ५) पेट की दाहिनी ओर - ॐ विष्णवे नमः ६) दाहिना बाहु - ॐ मधुसूदनाय नमः ७) गले की दाहिनी ओर - ॐ त्रिविक्रमाय नमः ८) पेट के बाएं- ॐ वामनाय नमः ९) बायाँ बाहु - ॐ श्रीधराय नमः १०) गला के बाएँ- ॐ हृषीकेषाय नमः ११) पेट के पीछे - ॐ पद्मनाभाय नमः १२) गले के पीछे - ॐ दामोदराय नमः

३) नामः (दास्य नाम) - आचार्य स्वामी द्वारा दिए गए नाम को धारण करना | दास्य नाम हमें जीवात्मा के सच्चे स्वरुप का ज्ञान देता है एवं हमें निरंतर याद दिलाता है की हम भगवान के दास हैं। यह हमें अहंकार रहित हो विनम्र होने की शिक्षा देता है। आलवार कहते हैं की जो माँ अपने संतान को भगवान का नाम देती हैं वो कभी नरक नहीं जातीं। हमें दास्य-नाम से छेड़छाड़ कर कोई शौर्टकट नाम नहीं रखना चाहिए।

4) मन्त्र (मंत्र-त्रय, रहस्य-त्रय)- आचार्य रहस्य मंत्र का उपदेश करते हैं। इसका विस्तृत वर्णन आगे के पन्नों में है।

५) यागः (देव-पूजा) - भगवत-अराधना सीखना। गरूड़ पूराण में भगवान् कहते हैं

मम भक्तजना वात्सल्यम, पूजयम अनुमोदनम, स्वयं अपि अर्चनम चैव....

(जो दूसरों को पूजा करते देख प्रसन्न होते हैं एवं स्वयं भी पूजा करते हैं)

महाभारत में भगवान कहते हैं:

शालिग्राम शिला यत्र यत्र द्वारविधि भवः। उपयो संगमो यत्र, मुक्ति न संशयः।।

पत्रं फलं पुष्पं तोयं, यो में भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः || (भ. गीता ९.२६)

समाश्रयणम के पश्चात् हमें हमेशा प्रसाद भगवान को अर्पित करके ही खाना चाहिए। इन्द्रियतृप्ति के लिए पकाया गया भोजन ग्रहण करना, पाप ग्रहण करने के सामान ही है। वही भोजन अगर भगवान को ध्यान में रखकर पकाया जाये एवं भगवान् को भोग लगाया जाये तो वह प्रसाद बन जाता है। प्रसाद खाने वाले के अन्दर सत्व-गुण का विकास होता है एवं घर के अन्दर सुख-शान्ति का वास होता है ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। (भ. गीता ९.२७)

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (भ. गीता ३.१३)

शरणागति ही सबसे बड़ी अराधना है। हमें नित्य भगवान् के श्री विग्रह या तस्वीर की पूजा करनी चाहिए। यदि शरीर अपवित्र होने के कारण या किसी मजबूरी के कारण अर्चा मूर्ति का पूजन संभव न हो तो 'मानसिक अराधना' का फल भी बाह्य अराधना के बराबर ही कहा गया है। *नमानी कृत्वा अभिवदन यदास्ते* (पुरुष सुक्तम)। कलयुग में भगवान् के नाम को स्वयं भगवान् का अवतार कहा गया है

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।। (भागवत पुराण १३.३.५२)

दैनिक पूजा-विधान

1. उर्ध्व पुण्ड्र धारण करना